बंजारा परंपरा और विधियों में सामाजिक बदलाव

प्रा.डॉ. अनिलकुमार आर.राठोड
हिंदी विभाग
शहीद भगतसिंग महाविदयालय,
किल्लारी, लातूर
शोध मार्गदर्शक
स्वा.रा.ती.म.विश्वविद्यालय नांदेड महाराष्ट्र

परिवर्तन कुदरत का अटूट नियम है। इस चराचर जगत् में समय, परिस्थिति एवं प्रसंगानुकुल परिवर्तन होता रहा है इतिहास इसका गवाह है। ब्रह्मांड की प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, समुदाय तथा समाज में समायानुकूल होता रहा परिवर्तन ही उसकी प्रगति (प्रोग्रेस) तथा उत्थान का परिचायक है। भारत देश यह विविधता में एकता वाला देश है। इस देश में विभिन्न जाति, धर्म, पंथ, संप्रदाय के लोग रहते है। इन विभिन्न जाति पंथ, संप्रदाय के लोगों को हम उन्नत जाति, पिछडी जाति तथा अतिपिछडी जाती इस तीन वर्गों में. विभाजित कर सकते है। पहले वर्ग की जाति मे शिक्षादीक्षा का आरंभ बहूत पहले ही हो जाने से वह उत्थान के यशोशिखर पर रही। दुसरे प्रकार की जाति प्रथम वर्ग के थोडे बहूत संपर्क में रहने से प्रगतिशील तथा परिवर्तनशील बनी रही। तीसरे (अतिपिछडी) वर्ग में वे तमाम जनजातियाँ आती है, जो शिक्षादीक्षा से कोसों दूर उन्नत समाज व्यवस्था परे, अपनी भाषा, समाज संस्कृति वेशभूषा, पर्व त्यौहार, संस्कार विधियॉ तथा परंपराओं को ढोती हुई अपनी उपजीविका चलाने हेतु नदी, नाले, जंगल, पर्वत पहाडों में दरदर की ठोकरें खाती भटकती रहने के लिए अभिशप्त बनी रही।

यहाँ हम अतिपिछडी घुमंतु बंजारा जनजाति में स्वतंत्रता के पश्चात् में आये बदलावों की चर्चा करनेवाले है। बंजारा जनजाति यह आदिम जनजाति रही है जिसका प्रमाण हमें प्राचीन काव्य, इतिहास तथ मोहनजोदाडों तथा हडप्पा के उत्खनन से प्राप्त होता है। मूलतः यहा वाणिज्य व्यापार करनेवाली जाति रही जिसके वाणिज्य तथा व्यापार विस्तार के बारे में मराठी अभ्यासक (अध्येयता) लोकहितवादी कहते है –"बनजारा लोगों के टाँडे व्यापार के लिए चीन, तिब्बत, ब्रह्मदेश, अरबस्थान तक जाते थे।" स्पष्ट है कि बंजारा जाति देश तथा विदेश मे भी वाणिज्य व्यापार हेतु भ्रमण करती करती रही। मूल रुप में यह जाति नमक (लवन) का व्यापार करती थी इसीलिए इन्हे लमाण भी कहा जाता है। मुगल काल में सन. १३९६ और १४०८ इन बारह सालो में जो अकाल पडा था। उस समय गोर बंजारों ने चीन, तिब्बत, ब्रह्मदेश, ईराण और काबूल आदि भागों से अपने बैलों पर अनाज ढोकर अपने देशवासियों की सेवा की इसका वर्णन 'ऐनेअकबरी' इस ग्रंथ में विस्तार से मिलता है। आरंभ मे यह जानजाति व्यापार वाणिज्य हेतु भिन्नभिन्न स्थानों तथा प्रदेशों मे भटकने के फलस्वरुप इनकी कोई आवास व्यवस्था नही थी। व्यापार हेतु जहाँ निकल पडे और जहाँ रात हुई वहीं पर कपडों के पेंडाल लगाकर गुजर बसर कर लेती थी। पर स्वतंत्रता पूर्व काल में अंग्रेजों ने इस जाति को क्रिमीनल ॲक्ट के तहत् गुनहगार जाति घोषित कर दरदर भटकने के लिये बाधित कर दिया। स्वतंत्रता पश्चात यह जाति पहाडी तथा उपरी सतह की बंजर भूमि देखकर वहीं पर घास फुँस तथा लकडी के झोपडें तथा छप्पर की बस्ती बनाकर स्थायी रुप से स्थित हो गयी। आगे चलकर इनकी अगली पीढी शिक्षा-दीक्षा ग्रहन कर जब नौकरी तथा व्यवसाय में पैर जमाने शुरु कर दिये वहीं टाँडे की झोपडे तथा छप्पर की बस्ती में पक्के मकान का बनने को आरंभ हुए। और अब सरकार की टाँडा बस्ती सुधार योजना और लोगों की सहाय्यता से टाँडे में पक्के मकान, पक्की सडके और बिजली की आपूर्ति होने से परंपरागत आवास व्यवस्था में अमूलचुल परिवर्तन हुए है जिसे ही टाँडा आवास व्यवस्था में सबसे बडा बदलाव कहा जा सकता है।

बंजारा टाँडो की समाज रचना की बात की जाये तो उसकी एक अलग परंपरा दिखाई देती थी। जिसमें नायक (टाँडे का मुखिया) कारभारी (कार्यवाहक) डायें (बाँए) सांळे के दिशा निर्देश से टाँडा चलता था। समाज में यदि आपत्ति जनक परिस्थिति तथा

लडाई – झगडे होने पर अपर्युक्त सभी लोग जात पंचायत बिठाकर समस्या का निवारण करते थे। परंतु वर्तमान में टाँडे की लडाई झगडों में समाज के लोगों ने न्याय पाने हेतु कानुन तथा अदालत का दरवाजा खटखटाना शुरु कर दिया है। परिणामतः परंपरागत समाज व्यवस्था को त्यागकर कानून प्रणाली का सहारा लेना ही सामाजिक बदलाव का परिचायक बन पडा है।

बंजारा समुदाय में ओरी बक्करी तथा हर त्यौहार के बाद कर (बकरा काटकर टाँडे के हर परिवार को हिस्सा बाँटना) मनाने की परंपरा पहले भी मौजुद थी और आज भी मौजूद है। पर आज समाज के तमाम लोगों में इस बात को लेकर पहले जैसी रुचि अब दिखाई नही देती। अतः स्पष्ट है कि इस रीति में भले ही परंपरागत बदलाव नही आया हो परंतु रुचिगत बदलाव आवश्य परिलक्षित होता है।

एक समय बंजारों की सबसे अलग पहचान उनकी परंपरागत वेशभूषा रही। उस वेशभूषा को धारण करने पर उसे अपनी पहचान दुसरों को करवाकर देने की कोई आवश्यकता ही नही थी। दूसरे उनकी उस परंपरागत वेशभूषा को देखकर ही जान लेते की यह बंजारे है। पर बीसवी सदी के अंतिम दशक से वर्तमान तक इनकी वेशभूषा में काफी बदलाव हो चला है। आज अन्य जाति समुदाय के लोगों की तरह इनकी वेशभूषा सर्वसमावेशक बन चुकी है। इसे भले ही हम पेहरावगत बदलाव तथा प्रगति का लक्षण मानते है, परंतु यह हमारी सांस्कृतिक विरासत के पतन की ओर संकेत करती है। इस वेशभूषा के साथ ही बंजारों की अपनी बंजारा बोली भाषा दुसरों से अलगाव की परिचायक रही है। बंजारा लोग आज भी अपने लोगों से बाते करते समय बंजारा बोली भाषा का ही प्रयोग करता है। परंतु समाज मे शिक्षा-दीक्षा का प्रचार प्रसार होने से उस बोली भाषा में काफी परिवर्तन होते हुए दृष्टिगोचर होता है। अब बंजारा बोली भाषा में कुछ क्षेत्रीय, प्रांतीय, राष्ट्रीय तथा आतंरराष्ट्रीय भाषाओं के शब्द घुल–मिल रहे है। इस संदर्भ में भाषा वैज्ञानिकों का कहना है कि– "जो बोली तथा भाषा दुसरी भाषाओं के शब्द सहजता से ग्रहण कर लेती है, वहीं उसकी जीवंतता तथा उत्थान का लक्षण है"। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि, बंजारा बोली भाषा के परंपरागत शब्द भंडार में कुछ नये शब्द जूड जाने से शब्द भंडार में अवश्य बदलाव तथा वृध्दि हुई है। पर शर्त यह है कि शिक्षित तथा अपने आपको उच्च विद्याविभूषित समझनेवाले समाज के तथाकथित लोग अन्य लोगों से विचार विनिमय करते समय भले ही किसी भी भाषा का प्रयोग करे परंतु हमारे अपनों से तथा परिवार जनों से संवाद हेतु बंजारा बोली भाषा का ही प्रयोग करे तो हम अपनी भाषा को गौरव दिलाने में कामयाब होंगे।

जहाँ बंजारा समुदाय की आवास व्यवस्था, समाज रचना, परंपरागत वेशभूषा, बोलीभाषा में बदलाव हुआ है वही इनके तीज त्यौहार के समय की जोनवाली विधियों तथा जन्म संस्कार, नामकरन विधि, विवाह संस्कार एवं मृत्यु संस्कार में भी अनेको परिवर्तन हुए है। आरंभ में तीज त्यौहारगत विधियाँ उपलब्ध साधन सामुग्री के आधारपर सादगीपूर्ण ढंग से समाज में मनाई जाती थी। परंतु वर्तमान समय में इन विधियों में बाहरी दिखावापन, ठॉठ-बाँट कि प्रवृत्ति पनपती हुई दिखाई देती है। मुलतः बंजारा समुदाय प्रकृति पूजक है। प्रकृति पूजा हेतु नीम की टहनी पीतल के लोटे में जल लेकर गाय के गोबर से जमींन पोतकर 'चोको' तयार कर हलदी, कुमकुम से सजाकर लोटे के सामने दीपक लगाकर, रुपये का सिक्का सीधा लगाकर पंच तत्व की पूजाविधि सपंन्न की जाती है। साथ ही अपनी कुलदेवता को प्रसन्न करने के लिए बकरे की बलि देने की परंपरा, अपने संत सेवालाल का भोग लगाने परंपरा भी समाज में रही है। इन विधियों के अलावा बंजारेत्तर समुदाय के देवी-देवता, पूजाविधि, जप, तप, वृत्त उपवास के आक्रमण से आज बंजारों मे ब्राह्मणीकरण का प्रभाव हावी हो चला है।

बंजारा जन्मसंस्कार की चर्चा की जाय तो पहले स्त्री की प्रसुति मायके में नही होती थी पर अब उसमें बदलाव आया है। अब प्रसुति मायके या ससुराल दोनो जगह पर की जा सकती है। प्रसुति के पश्चात 'दळवा धोकेरो' एवं 'वेकळप' संस्कार विधि की जाती है। पर शहरी सभ्यता में यह विधियाँ प्राय लुप्त होती नजर आ रही है। इसके अलावा प्रसुति के बाद बच्चों की नामकरण विधि भी की जाती है। पहले शिशु का जन्म किस दिन हुआ उस दिन के नाम पर उसका नामकरण किया जाता था। शिशु यादि लडका है और व सोमवार के दिन पैदा हुआ तो उसका नाम सोमला, मंगल के दिन हुआ तो मंगल्या बुधके दिन हुआ तो बद्या, शुक्रवार के दिन हुआ तो सकऱ्या रखा जाता था। शीशु यदि लडकी है तो कृमशः सोमली, मंगली, बदली, सकरी आदि रखा जाता था। पर अब वर्तमान मे इन परपरागत नामों को त्यागकर सभी अधुनातन नामों को स्वीकार कर लिया गया है जो परिवर्तन का परिचायक है। विवाह संस्कार की दृष्टि से पहले के समय के कडे नियम एवं गलत मान्यताएँ प्राय अब नष्ट होती जा रही है। पहले शादी में वर (दुल्हे) को कुछ समय ससुराल मे बिताना पडता था। विवाह हुए बिना अपने घर वापस नही लौट सकता था। परंतु वर्तमान में 'झट मंगनी पट ब्याह' की प्रवृत्ति को अपना लिया गया है। शादी यह संस्कार अब केवल एक दिन का

होकर रह गया है। मृत्यु संस्कार में स्त्रियों को स्मशान में जाने की मान्यता पहले नही थी परंतु आजकल इस मान्यता को दरकिनार कर दिया गया है। यह सबसे बडा बदलाव माना जा सकता है।

अतंतोगत्वा यही कहा जा सकता हैं कि, बंजारा समाज में जो कुछ परंपरा तथा संस्कार विधियाँ प्रचलित थी वह आज भी विद्यमान है, परंतु उसमें समयानुकूल तथा प्रसंगानुकूल अधूनातनता एवं नितनविनता का समावेश हो चुका है जिसे ही हम बदलाव कह सकते है।

संदर्भग्रंथ

1) बंजारा लोगों का इतिहास – बळीराम हीरामण पाटील.
2) गोर बंजारा जनजाति का इतिहास – प्रा. मोतीराज राठोड.
3) बंजारा समाज ऐतिहासिक परीप्रेक्ष्य – डॉ. वी. रामकोटी पवार.

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com